गद्य खंड

शिक्षा और स्वतंत्रता

– बच्चों को स्वाधीन बनाओ –

बच्चों में स्वाधीनता के भाव पैदा करने के लिए यह ज़रूरत है कि जितनी जल्दी हो सके, उन्हें कुछ काम करने का अवसर दिया जाए। ... इसका मतलब यह है कि बाहरी दबाव की जगह हममें आत्म-संयम का उदय हो। सच्चा स्वाधीन आदमी वही है, जिसका जीवन आत्मा के शासन से संयमित हो जाता है, जिसे किसी बाहरी दबाव की ज़रूरत नहीं पड़ती।

–प्रेमचंद (हंस, 1930)

महादेवी वर्मा 11

जन्म : *सन् 1907, फ़र्रूखाबाद (उत्तर प्रदेश)*
प्रमुख रचनाएँ : *दीपशिखा, यामा (काव्य-संग्रह); शृंखला की कड़ियाँ, आपदा, संकल्पिता, भारतीय संस्कृति के स्वर (निबंध-संग्रह); अतीत के चलचित्र, स्मृति की रेखाएँ, पथ के साथी, मेरा परिवार (संस्मरण/रेखाचित्र)*
प्रमुख पुरस्कार : *ज्ञानपीठ पुरस्कार ('यामा' संग्रह के लिए 1983 ई. में), उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का **भारत भारती** पुरस्कार, पद्मभूषण (1956 ई.)*
निधन : *सन् 1987, इलाहाबाद*

> *संसार के मानव-समुदाय में वही व्यक्ति स्थान और सम्मान पा सकता है, वही जीवित कहा जा सकता है जिसके हृदय और मस्तिष्क ने समुचित विकास पाया हो और जो अपने व्यक्तित्व द्वारा मनुष्य समाज से रागात्मक के अतिरिक्त बौद्धिक संबंध भी स्थापित कर सकने में समर्थ हो।*

साहित्य सेवी और समाज सेवी दोनों रूपों में महादेवी वर्मा की प्रतिष्ठा रही है। महात्मा गांधी की दिखाई राह पर अपना जीवन समर्पित कर उन्होंने शिक्षा और समाज-कल्याण के क्षेत्र में निरंतर कार्य किया। नारी-समाज में शिक्षा-प्रसार के उद्देश्य से उन्होंने प्रयाग महिला विद्यापीठ की स्थापना की। साहित्य जगत में महादेवी वर्मा की प्रतिष्ठा बहुमुखी प्रतिभा के रचनाकार के रूप में रही है। अगर कविता के क्षेत्र में वे छायावाद के चार स्तंभों में से एक मानी जाती हैं (अन्य तीन हैं—पंत, प्रसाद और निराला), तो अपने निबंधों और संस्मरणात्मक रेखाचित्रों के कारण एक अप्रतिम गद्यकार के रूप में उनकी चर्चा होती रही है। कविता और गद्य इन दोनों क्षेत्रों में उनकी प्रतिभा अलग-अलग स्वभाव लेकर सक्रिय हुई दिखती है। कविताओं में वे अपनी आंतरिक वेदना और पीड़ा को व्यक्त करती हुई इस लोक से परे किसी और सत्ता की ओर अभिमुख दिखलाई पड़ती हैं, तो अपने गद्य में उनका गहरा सामाजिक सरोकार स्थान पाता है। उनकी शृंखला की कड़ियाँ (1942 ई.) उस समय की अद्वितीय रचना

है, जो हिंदी में स्त्री-विमर्श की भव्य प्रस्तावना है। उनके संस्मरणात्मक रेखाचित्र अपने आस पास के ऐसे चरित्रों और प्रसंगों को लेकर लिखे गए हैं, जिनकी साधारणता हमारा ध्यान नहीं खींच पाती लेकिन महादेवी जी की मर्मभेदी और करुणामयी दृष्टि उन चरित्रों की साधारणता में असाधारण तत्त्वों का संधान करती है। इस तरह समाज के शोषित-पीड़ित तबके को उन्होंने अपनी गद्य-रचनाओं में नायकत्व प्रदान किया है। उनके इस प्रयास ने हिंदी के साहित्यिक समाज पर ऐसा गहरा असर डाला कि संस्मरणात्मक रेखाचित्र की विधा के लिए शोषित-पीड़ित आम जन को विषय-वस्तु के रूप में मान्यता मिल गई है।

भक्तिन *महादेवी जी का प्रसिद्ध संस्मरणात्मक रेखाचित्र है जो* ***स्मृति की रेखाएँ*** *में संकलित है। इसमें महादेवी जी ने अपनी सेविका भक्तिन के अतीत और वर्तमान का परिचय देते हुए उसके व्यक्तित्व का बहुत दिलचस्प खाका खींचा है। महादेवी के घर में काम शुरू करने से पहले उसने कैसे एक संघर्षशील, स्वाभिमानी और कर्मठ जीवन जिया, कैसे पितृसत्तात्मक-मान्यताओं और छल-छद्म भरे समाज में अपने और अपनी बेटियों के हक की लड़ाई लड़ती रही और उसमें हार कर कैसे ज़िंदगी की राह पूरी तरह बदल लेने के निर्णय तक पहुँची। इसका अत्यंत संवेदनशील चित्रण इस पाठ में हुआ है। इसके साथ, भक्तिन महादेवी जी के जीवन में आकर छा जाने वाली एक ऐसी परिस्थिति के रूप में दिखलाई पड़ती है, जिसके कारण लेखिका के व्यक्तित्व के कई अनछुए / प्रच्छन्न आयाम उद्घाटित होते चलते हैं। इसी कारण अपने व्यक्तित्व का ज़रूरी अंश मानकर वे भक्तिन को खोना नहीं चाहतीं। समग्रत: इस पाठ को परिस्थितिवश अक्खड़ बनी, पर महादेवी के प्रति अनमोल आत्मीयता से भरी भक्तिन के बहाने स्त्री-अस्मिता की संघर्षपूर्ण आवाज़ के रूप में भी पढ़ा जाना चाहिए।*

भक्तिन
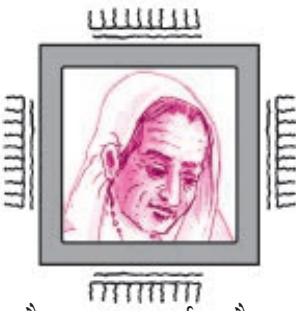
छोटे कद और दुबले शरीरवाली भक्तिन अपने पतले ओठों के कोनों में दृढ़ संकल्प और छोटी आँखों में एक विचित्र समझदारी लेकर जिस दिन पहले-पहले मेरे पास आ उपस्थित हुई थी तब से आज तक एक युग का समय बीत चुका है। पर जब कोई जिज्ञासु उससे इस संबंध में प्रश्न कर बैठता है, तब वह पलकों को आधी पुतलियों तक गिराकर और चिंतन की मुद्रा में ठुड्डी को कुछ ऊपर उठाकर विश्वास भरे कंठ से उत्तर देती है—'तुम पचै का का बताई—यहै पचास बरिस से संग रहित है।' इस हिसाब से मैं पचहत्तर की ठहरती हूँ और वह सौ वर्ष की आयु भी पार कर जाती है, इसका भक्तिन को पता नहीं। पता हो भी, तो संभवत: वह मेरे साथ बीते हुए समय में रत्ती भर भी कम न करना चाहेगी। मुझे तो विश्वास होता जा रहा है कि कुछ वर्ष और बीत जाने पर वह मेरे साथ रहने के समय को खींच कर सौ वर्ष तक पहुँचा देगी, चाहे उसके हिसाब से मुझे डेढ़ सौ वर्ष की असंभव आयु का भार क्यों न ढोना पड़े।

सेवक-धर्म में हनुमान जी से स्पर्द्धा करने वाली भक्तिन किसी अंजना की पुत्री न होकर एक अनामधन्या गोपालिका की कन्या है—नाम है लछमिन अर्थात लक्ष्मी। पर जैसे मेरे नाम की विशालता मेरे लिए दुर्वह है, वैसे ही लक्ष्मी की समृद्धि भक्तिन के कपाल की कुंचित रेखाओं में नहीं बँध सकी। वैसे तो जीवन में प्राय: सभी को अपने-अपने नाम का विरोधाभास लेकर जीना पड़ता है; पर भक्तिन बहुत समझदार है, क्योंकि वह अपना समृद्धि-सूचक नाम किसी को बताती नहीं। केवल जब नौकरी की खोज में आई थी, तब ईमानदारी का परिचय देने के लिए उसने शेष इतिवृत्त के साथ यह भी बता दिया; पर इस प्रार्थना के साथ कि मैं कभी नाम का उपयोग न करूँ। उपनाम रखने की प्रतिभा होती, तो मैं सबसे पहले उसका प्रयोग अपने ऊपर करती, इस तथ्य को वह देहातिन क्या जाने, इसी से जब मैंने कंठी माला देखकर उसका नया नामकरण किया तब वह भक्तिन-जैसे कवित्वहीन नाम को पाकर भी गद्‌गद हो उठी।

भक्तिन के जीवन का इतिवृत्त बिना जाने हुए उसके स्वभाव को पूर्णत: क्या अंशत: समझना भी कठिन होगा। वह ऐतिहासिक झूँसी में गाँव-प्रसिद्ध एक सूरमा की

एकलौती बेटी ही नहीं, विमाता की किंवदंती बन जाने वाली ममता की छाया में भी पली है। पाँच वर्ष की वय में उसे हँडिया ग्राम के एक संपन्न गोपालक की सबसे छोटी पुत्रवधू बनाकर पिता ने शास्त्र से दो पग आगे रहने की ख्याति कमाई और नौ वर्षीया युवती का गौना देकर विमाता ने, बिना माँगे पराया धन लौटाने वाले महाजन का पुण्य लूटा।

पिता का उस पर अगाध प्रेम होने के कारण स्वभावत: ईर्ष्यालु और संपत्ति की रक्षा में सतर्क विमाता ने उनके मरणांतक रोग का समाचार तब भेजा, जब वह मृत्यु की सूचना भी बन चुका था। रोने-पीटने के अपशकुन से बचने के लिए सास ने भी उसे कुछ न बताया। बहुत दिन से नैहर नहीं गई, सो जाकर देख आवे, यही कहकर और पहना-उढ़ाकर सास ने उसे विदा कर दिया। इस अप्रत्याशित अनुग्रह ने उसके पैरों में जो पंख लगा दिए थे, वे गाँव की सीमा में पहुँचते ही झड़ गए। 'हाय लछमिन अब आई' की अस्पष्ट पुनरावृत्तियाँ और स्पष्ट सहानुभूतिपूर्ण दृष्टियाँ उसे घर तक ठेल ले गईं। पर वहाँ न पिता का चिह्न शेष था, न विमाता के व्यवहार में शिष्टाचार का लेश था। दुख से शिथिल और अपमान से जलती हुई वह उस घर में पानी भी बिना पिए उलटे पैरों ससुराल लौट पड़ी। सास को खरी-खोटी सुनाकर उसने विमाता पर आया हुआ क्रोध शांत किया और पति के ऊपर गहने फेंक-फेंककर उसने पिता के चिर विछोह की मर्मव्यथा व्यक्त की।

जीवन के दूसरे परिच्छेद में भी सुख की अपेक्षा दुख ही अधिक है। जब उसने गेहुँए रंग और बटिया जैसे मुख वाली पहली कन्या के दो संस्करण और कर डाले तब सास और जिठानियों ने ओठ बिचकाकर उपेक्षा प्रकट की। उचित भी था, क्योंकि सास तीन-तीन कमाऊ वीरों की विधात्री बनकर मचिया के ऊपर विराजमान पुरखिन के पद पर अभिषिक्त हो चुकी थी और दोनों जिठानियाँ काक-भुशंडी जैसे काले लालों की क्रमबद्ध सृष्टि करके इस पद के लिए उम्मीदवार थीं। छोटी बहू के लीक छोड़कर चलने के कारण उसे दंड मिलना आवश्यक हो गया।

जिठानियाँ बैठकर लोक-चर्चा करतीं और उनके कलूटे लड़के धूल उड़ाते; वह मट्ठा फेरती, कूटती, पीसती, राँधती और उसकी नन्ही लड़कियाँ गोबर उठातीं, कंडे पाथतीं। जिठानियाँ अपने भात पर सफ़ेद राब रखकर गाढ़ा दूध डालतीं और अपने लड़कों को औटते हुए दूध पर से मलाई उतारकर खिलातीं। वह काले गुड़ की डली के साथ कठौती में मट्ठा पाती और उसकी लड़कियाँ चने-बाजरे की घुघरी चबातीं ।

इस दंड-विधान के भीतर कोई ऐसी धारा नहीं थी, जिसके अनुसार खोटे सिक्कों की टकसाल-जैसी पत्नी से पति को विरक्त किया जा सकता। सारी चुगली-चबाई की परिणति, उसके पत्नी-प्रेम को बढ़ाकर ही होती थी। जिठानियाँ बात-बात पर धमाधम पीटी-कूटी जातीं; पर उसके पति ने उसे कभी उँगली भी नहीं छुआई। वह बड़े बाप की बड़ी बात वाली

बेटी को पहचानता था। इसके अतिरिक्त परिश्रमी, तेजस्विनी और पति के प्रति रोम-रोम से सच्ची पत्नी को वह चाहता भी बहुत रहा होगा, क्योंकि उसके प्रेम के बल पर ही पत्नी ने अलगौझा करके सबको अँगूठा दिखा दिया। काम वही करती थी, इसलिए गाय-भैंस, खेत-खलिहान, अमराई के पेड़ आदि के संबंध में उसी का ज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा था। उसने छाँट-छाँट कर, ऊपर से असंतोष की मुद्रा के साथ और भीतर से पुलकित होते हुए जो कुछ लिया, वह सबसे अच्छा भी रहा, साथ ही परिश्रमी दंपति के निरंतर प्रयास से उसका सोना बन जाना भी स्वाभाविक हो गया।

धूमधाम से बड़ी लड़की का विवाह करने के उपरांत, पति ने घरौंदे से खेलती हुई दो कन्याओं और कच्ची गृहस्थी का भार उनतीस वर्ष की पत्नी पर छोड़कर संसार से विदा ली। जब वह मरा, तब उसकी अवस्था छत्तीस वर्ष से कुछ ही अधिक रही होगी; पर पत्नी आज उसे बुढ़ऊ कह कर स्मरण करती है। भक्तिन सोचती है कि जब वह बूढ़ी हो गई, तब क्या परमात्मा के यहाँ वे भी न बुढ़ा गए होंगे, अतः उन्हें बुढ़ऊ न कहना उनका घोर अपमान है।

हाँ, तो भक्तिन के हरे-भरे खेत, मोटी-ताज़ी गाय-भैंस और फलों से लदे पेड़ देखकर जेठ-जिठौतों के मुँह में पानी भर आना ही स्वाभाविक था। इन सबकी प्राप्ति तो तभी संभव थी, जब भइयहू दूसरा घर कर लेती; पर जन्म से खोटी भक्तिन इनके चकमे में आई ही नहीं। उसने क्रोध से पाँव पटक-पटककर आँगन को कंपायमान करते हुए कहा– 'हम कुकुरी बिलारी न होयँ, हमार मन पुसाई तौ हम दूसरा के जाब नाहिं त तुम्हार पचै की छाती पै होरहा भूँजब और राज करब, समुझे रहौ।'

उसने ससुर, अजिया ससुर और जाने कै पीढ़ियों के ससुरगणों की उपार्जित जगह-ज़मीन में से सुई की नोक बराबर भी देने की उदारता नहीं दिखाई। इसके अतिरिक्त गुरु से कान फुँकवा, कंठी बाँध और पति के नाम पर घी से चिकने केशों को समर्पित कर अपने कभी न टलने की घोषणा कर दी। भविष्य में भी संपत्ति सुरक्षित रखने के लिए उसने छोटी लड़कियों के हाथ पीले कर उन्हें ससुराल पहुँचाया और पति के चुने हुए बड़े दामाद को घरजमाई बनाकर रखा। इस प्रकार उसके जीवन का तीसरा परिच्छेद आरंभ हुआ।

भक्तिन का दुर्भाग्य भी उससे कम हठी नहीं था, इसी से किशोरी से युवती होते ही बड़ी लड़की भी विधवा हो गई। भइयहू से पार न पा सकने वाले जेठों और काकी को परास्त करने के लिए कटिबद्ध जिठौतों ने आशा की एक किरण देख पाई। विधवा बहिन के गठबंधन के लिए बड़ा जिठौत अपने तीतर लड़ाने वाले साले को बुला लाया, क्योंकि उसका हो जाने पर सब कुछ उन्हीं के अधिकार में रहता। भक्तिन की लड़की भी माँ से कम समझदार नहीं थी, इसी से उसने वर को नापसंद कर दिया। बाहर के बहनोई का आना चचेरे

भाइयों के लिए सुविधाजनक नहीं था, अतः यह प्रस्ताव जहाँ-का-तहाँ रह गया। तब वे दोनों माँ-बेटी खूब मन लगाकर अपनी संपत्ति की देख-भाल करने लगीं और 'मान न मान मैं तेरा मेहमान' की कहावत चरितार्थ करने वाले वर के समर्थक उसे किसी-न-किसी प्रकार पति की पदवी पर अभिषिक्त करने का उपाय सोचने लगे।

एक दिन माँ की अनुपस्थिति में वर महाशय ने बेटी की कोठरी में घुस कर भीतर से द्वार बंद कर लिया और उसके समर्थक गाँववालों को बुलाने लगे। युवती ने जब इस डकैत वर की मरम्मत कर कुंडी खोली, तब पंच बेचारे समस्या में पड़ गए। तीतरबाज़ युवक कहता था, वह निमंत्रण पाकर भीतर गया और युवती उसके मुख पर अपनी पाँचों उँगलियों के उभार में इस निमंत्रण के अक्षर पढ़ने का अनुरोध करती थी। अंत में दूध-का-दूध पानी-का-पानी करने के लिए पंचायत बैठी और सबने सिर हिला-हिलाकर इस समस्या का मूल कारण कलियुग को स्वीकार किया। अपीलहीन फ़ैसला हुआ कि चाहे उन दोनों में एक सच्चा हो चाहे दोनों झूठे; पर जब वे एक कोठरी से निकले, तब उनका पति-पत्नी के रूप में रहना ही कलियुग के दोष का परिमार्जन कर सकता है। अपमानित बालिका ने ओठ काटकर लहू निकाल लिया और माँ ने आग्नेय नेत्रों से गले पड़े दामाद को देखा। संबंध कुछ सुखकर नहीं हुआ, क्योंकि दामाद अब निश्‍चिंत होकर तीतर लड़ाता था और बेटी विवश क्रोध से जलती रहती थी। इतने यत्न से सँभाले हुए गाय-ढोर, खेती-बारी जब पारिवारिक द्वेष में ऐसे झुलस गए कि लगान अदा करना भी भारी हो गया, सुख से रहने की कौन कहे। अंत में एक बार लगान न पहुँचने पर ज़मींदार ने भक्तिन को बुलाकर दिन भर कड़ी धूप में खड़ा रखा। यह अपमान तो उसकी कर्मठता में सबसे बड़ा कलंक बन गया, अतः दूसरे ही दिन भक्तिन कमाई के विचार से शहर आ पहुँची।

घुटी हुई चाँद को मोटी मैली धोती से ढाँके और मानो सब प्रकार की आहट सुनने के लिए कान कपड़े से बाहर निकाले हुए भक्तिन जब मेरे यहाँ सेवक-धर्म में दीक्षित हुई, तब उसके जीवन के चौथे और संभवतः अंतिम परिच्छेद का जो अथ हुआ, उसकी इति अभी दूर है।

भक्तिन की वेश-भूषा में गृहस्थ और वैरागी का सम्मिश्रण देखकर मैंने शंका से प्रश्न किया—क्या तुम खाना बनाना जानती हो! उत्तर में उसने, ऊपर के ओठ को सिकोड़ और नीचे के अधर को कुछ बढ़ा कर आश्वासन की मुद्रा के साथ कहा—ई कउन बड़ी बात आय। रोटी बनाय जानित है, दाल राँध लेइत है, साग-भाजी छँउक सकित है, अउर बाकी का रहा!

दूसरे दिन तड़के ही सिर पर कई लोटे औंधा कर उसने मेरी धुली धोती जल के छींटों से पवित्र कर पहनी और पूर्व के अंधकार और मेरी दीवार से फूटते हुए सूर्य और पीपल का, दो लोटे जल से अभिनंदन किया। दो मिनट नाक दबाकर जप करने के उपरांत जब वह

कोयले की मोटी रेखा से अपने साम्राज्य की सीमा निश्चित कर चौके में प्रतिष्ठित हुई, तब मैंने समझ लिया कि इस सेवक का साथ टेढ़ी खीर है। अपने भोजन के संबंध में नितांत वीतराग होने पर भी मैं पाक-विद्या के लिए परिवार में प्रख्यात हूँ और कोई भी पाक-कुशल दूसरे के काम में नुक्ताचीनी बिना किए रह नहीं सकता। पर जब छूत-पाक पर प्राण देनेवाले व्यक्तियों का, बात-बात पर भूखा मरना स्मरण हो आया और भक्तिन की शंकाकुल दृष्टि में छिपे हुए निषेध का अनुभव किया, तब कोयले की रेखा मेरे लिए लक्ष्मण के धनुष से खींची हुई रेखा के सामने दुर्लंघ्य हो उठी। निरुपाय अपने कमरे में बिछौने में पड़कर नाक के ऊपर खुली हुई पुस्तक स्थापित कर मैं चौके में पीढ़े पर आसीन अनधिकारी को भूलने का प्रयास करने लगी।

भोजन के समय जब मैंने अपनी निश्चित सीमा के भीतर निर्दिष्ट स्थान ग्रहण कर लिया, तब भक्तिन ने प्रसन्नता से लबालब दृष्टि और आत्मतुष्टि से आप्लावित मुसकुराहट के साथ मेरी फूल की थाली में एक अंगुल मोटी और गहरी काली चित्तीदार चार रोटियाँ रखकर उसे टेढ़ी कर गाढ़ी दाल परोस दी। पर जब उसके उत्साह पर तुषारपात करते हुए मैंने रुआँसे भाव से कहा– 'यह क्या बनाया है?' तब वह हतबुद्धि हो रही।

रोटियाँ अच्छी सेंकने के प्रयास में कुछ अधिक खरी हो गई हैं; पर अच्छी हैं। तरकारियाँ थीं, पर जब दाल बनी है तब उनका क्या काम–शाम को दाल न बनाकर तरकारी बना दी जाएगी। दूध-घी मुझे अच्छा नहीं लगता, नहीं तो सब ठीक हो जाता। अब न हो तो अमचूर और लाल मिर्च की चटनी पीस ली जावे। उससे भी काम न चले, तो वह गाँव से लाई हुई गठरी में से थोड़ा-सा गुड़ दे देगी। और शहर के लोग क्या कलाबत्तू खाते हैं? फिर वह कुछ अनाड़िन या फूहड़ नहीं। उसके ससुर, पितिया ससुर, अजिया सास आदि ने उसकी पाक-कुशलता के लिए न जाने कितने मौखिक प्रमाण-पत्र दे डाले हैं।

भक्तिन के इस सारगर्भित लेक्चर का प्रभाव यह हुआ कि मैं मीठे से विरक्ति के कारण बिना गुड़ के और घी से अरुचि के कारण रूखी दाल से एक मोटी रोटी खाकर बहुत ठाठ से यूनिवर्सिटी पहुँची और न्याय-सूत्र पढ़ते-पढ़ते शहर और देहात के जीवन के इस अंतर पर विचार करती रही।

अलग भोजन की व्यवस्था करनी पड़ी थी, अपने गिरते हुए स्वास्थ्य और परिवारवालों की चिंता-निवारण के लिए, पर प्रबंध ऐसा हो गया कि उपचार का प्रश्न ही खो गया। इस देहाती वृद्धा ने जीवन की सरलता के प्रति मुझे इतना जाग्रत कर दिया था कि मैं अपनी असुविधाएँ छिपाने लगी, सुविधाओं की चिंता करना तो दूर की बात।

इसके अतिरिक्त भक्तिन का स्वभाव ही ऐसा बन चुका है कि वह दूसरों को अपने मन के अनुसार बना लेना चाहती है; पर अपने संबंध में किसी प्रकार के परिवर्तन की

कल्पना तक उसके लिए संभव नहीं। इसी से आज मैं अधिक देहाती हूँ; पर उसे शहर की हवा नहीं लग पाई। मकई का, रात को बना दलिया, सवेरे मट्ठे से सोंधा लगता है। बाजरे के तिल लगाकर बनाए हुए पुए गरम कम अच्छे लगते हैं। ज्वार के भुने हुए भुट्टे के हरे दानों की खिचड़ी स्वादिष्ट होती है। सफ़ेद महुए की लपसी संसार भर के हलवे को लजा सकती है; आदि वह मुझे क्रियात्मक रूप से सिखाती रहती है; पर यहाँ का रसगुल्ला तक भक्तिन के पोपले मुँह में प्रवेश करने का सौभाग्य नहीं प्राप्त कर सका। मेरे रात-दिन नाराज़ होने पर भी उसने साफ़ धोती पहनना नहीं सीखा; पर मेरे स्वयं धोकर फैलाए हुए कपड़ों को भी वह तह करने के बहाने सिलवटों से भर देती है। मुझे उसने अपनी भाषा की अनेक दंतकथाएँ कंठस्थ करा दी हैं; पर पुकारने पर वह 'आँय' के स्थान में 'जी' कहने का शिष्टाचार भी नहीं सीख सकती।

भक्तिन अच्छी है, यह कहना कठिन होगा, क्योंकि उसमें दुर्गुणों का अभाव नहीं। वह सत्यवादी हरिश्चंद्र नहीं बन सकती; पर 'नरो वा कुंजरो वा' कहने में भी विश्वास नहीं करती। मेरे इधर-उधर पड़े पैसे-रुपये, भंडार-घर की किसी मटकी में कैसे अंतरहित हो जाते हैं, यह रहस्य भी भक्तिन जानती है। पर, उस संबंध में किसी के संकेत करते ही वह उसे शास्त्रार्थ के लिए चुनौती दे डालती है, जिसको स्वीकार कर लेना किसी तर्क-शिरोमणि के लिए संभव नहीं। यह उसका अपना घर ठहरा, पैसा-रुपया जो इधर-उधर पड़ा देखा, सँभालकर रख लिया। यह क्या चोरी है! उसके जीवन का परम कर्तव्य मुझे प्रसन्न रखना है—जिस बात से मुझे क्रोध आ सकता है, उसे बदलकर इधर-उधर करके बताना, क्या झूठ है! इतनी चोरी और इतना झूठ तो धर्मराज महाराज में भी होगा, नहीं तो वे भगवान जी को कैसे प्रसन्न रख सकते और संसार को कैसे चला सकते!

शास्त्र का प्रश्न भी भक्तिन अपनी सुविधा के अनुसार सुलझा लेती है। मुझे स्त्रियों का सिर घुटाना अच्छा नहीं लगता, अतः मैंने भक्तिन को रोका। उसने अकुंठित भाव से उत्तर दिया कि शास्त्र में लिखा है। कुतूहलवश मैं पूछ ही बैठी—'क्या लिखा है?' तुरंत उत्तर मिला—'तीरथ गए मुँडाए सिद्ध।' कौन-से शास्त्र का यह रहस्यमय सूत्र है, यह जान लेना मेरे लिए संभव ही नहीं था। अतः मैं हारकर मौन हो रही और भक्तिन का चूड़ाकर्म हर बृहस्पतिवार को, एक दरिद्र नापित के गंगाजल से धुले उस्तरे द्वारा यथाविधि निष्पन्न होता रहा।

पर वह मूर्ख है या विद्या-बुद्धि का महत्त्व नहीं जानती, यह कहना असत्य कहना है। अपने विद्या के अभाव को वह मेरी पढ़ाई-लिखाई पर अभिमान करके भर लेती है। एक बार जब मैंने सब काम करनेवालों से अँगूठे के निशान के स्थान में हस्ताक्षर लेने का नियम बनाया तब भक्तिन बड़े कष्ट में पड़ गई, क्योंकि एक तो उससे पढ़ने की मुसीबत नहीं उठाई जा सकती थी, दूसरे सब गाड़ीवान दाइयों के साथ बैठकर पढ़ना उसकी वयोवृद्धता का

अपमान था। अतः उसने कहना आरंभ किया–'हमारे मलकिन तौ रात-दिन कितबियन माँ गड़ी रहती हैं। अब हमहूँ पढ़ै लागब तो घर-गिरिस्ती कउन देखी-सुनी।'

पढ़ाने वाले और पढ़ने वाले दोनों पर इस तर्क का ऐसा प्रभाव पड़ा कि भक्तिन इंस्पेक्टर के समान क्लास में घूम-घूमकर किसी के ***आ इ*** की बनावट किसी के हाथ की मंथरता, किसी की बुद्धि की मंदता पर टीका-टिप्पणी करने का अधिकार पा गई। उसे तो अँगूठा निशानी देकर वेतन लेना नहीं होता, इसी से बिना पढ़े ही वह पढ़ने वालों की गुरु बन बैठी। वह अपने तर्क ही नहीं, तर्कहीनता के लिए भी प्रमाण खोज लेने में पटु है। अपने-आपको महत्त्व देने के लिए ही वह अपनी मालकिन को असाधारणता देना चाहती है; पर इसके लिए भी प्रमाण की खोज-ढूँढ़ आवश्यक हो उठती है।

जब एक बार मैं उत्तर-पुस्तकों और चित्रों को लेकर व्यस्त थी, तब भक्तिन सबसे कहती घूमी– 'ऊ बिचरिअउ तौ रात-दिन काम माँ झुकी रहती हैं, अउर तुम पचै घूमती फिरती हौ! चलौ तनिक हाथ बटाय लेउ।' सब जानते थे कि ऐसे कामों में हाथ नहीं बटाया जा सकता, अतः उन्होंने अपनी असमर्थता प्रकट कर भक्तिन से पिंड छुड़ाया। बस इसी प्रमाण के आधार पर उसकी सब

अतिशयोक्तियाँ अमरबेल–सी फैलने लगीं–उसकी मालकिन–जैसा काम कोई जानता ही नहीं, इसी से तो बुलाने पर भी कोई हाथ बटाने की हिम्मत नहीं करता।

पर वह स्वयं कोई सहायता नहीं दे सकती, इसे मानना अपनी हीनता स्वीकार करना है–इसी से वह द्वार पर बैठकर बार–बार कुछ काम बताने का आग्रह करती है। कभी उत्तर–पुस्तकों को बाँधकर, कभी अधूरे चित्र को कोने में रखकर, कभी रंग की प्याली धोकर और कभी चटाई को आँचल से झाड़कर वह जैसी सहायता पहुँचाती है, उससे भक्तिन का अन्य व्यक्तियों से अधिक बुद्धिमान होना प्रमाणित हो जाता है। वह जानती है कि जब दूसरे मेरा हाथ बटाने की कल्पना तक नहीं कर सकते, तब वह सहायता की इच्छा को क्रियात्मक रूप देती है, इसी से मेरी किसी पुस्तक के प्रकाशित होने पर उसके मुख पर प्रसन्नता की आभा वैसे ही उद्भासित हो उठती है जैसे स्विच दबाने से बल्ब में छिपा आलोक। वह सूने में उसे बार–बार छूकर, आँखों के निकट ले जाकर और सब ओर घुमा–फिराकर मानो अपनी सहायता का अंश खोजती है और उसकी दृष्टि में व्यक्त आत्मघोष कहता है कि उसे निराश नहीं होना पड़ता। यह स्वाभाविक भी है। किसी चित्र को पूरा करने में व्यस्त, मैं जब बार–बार कहने पर भी भोजन के लिए नहीं उठती, तब वह कभी दही का शर्बत, कभी तुलसी की चाय वहीं देकर भूख का कष्ट नहीं सहने देती।

दिन भर के कार्य–भार से छुट्टी पाकर जब मैं कोई लेख समाप्त करने या भाव को छंदबद्ध करने बैठती हूँ, तब छात्रावास की रोशनी बुझ चुकती है, मेरी हिरनी सोना तख्त के पैताने फ़र्श पर बैठकर पागुर करना बंद कर देती है, कुत्ता बसंत छोटी मचिया पर पंजों में मुख रखकर आँखें मूँद लेता है और बिल्ली गोधूलि मेरे तकिए पर सिकुड़कर सो रहती है।

पर मुझे रात की निस्तब्धता में अकेली न छोड़ने के विचार से कोने में दरी के आसन पर बैठकर बिजली की चकाचौंध से आँखें मिचमिचाती हुई भक्तिन, प्रशांत भाव से जागरण करती है। वह ऊँघती भी नहीं, क्योंकि मेरे सिर उठाते ही उसकी धुँधली दृष्टि मेरी आँखों का अनुसरण करने लगती है। यदि मैं सिरहाने रखे रैक की ओर देखती हूँ, तो वह उठकर आवश्यक पुस्तक का रंग पूछती है, यदि मैं कलम रख देती हूँ, तो वह स्याही उठा लाती है और यदि मैं कागज़ एक ओर सरका देती हूँ, तो वह दूसरी फ़ाइल टटोलती है।

बहुत रात गए सोने पर भी मैं जल्दी ही उठती हूँ और भक्तिन को तो मुझसे भी पहले जागना पड़ता है–सोना उछल–कूद के लिए बाहर जाने को आकुल रहती है, बसंत नित्य कर्म के लिए दरवाज़ा खुलवाना चाहता है और गोधूलि चिड़ियों की चहचहाहट में शिकार का आमंत्रण सुन लेती है।

मेरे भ्रमण की भी एकांत साथिन भक्तिन ही रही है। बदरी–केदार आदि के ऊँचे–नीचे और तंग पहाड़ी रास्ते में जैसे वह हठ करके मेरे आगे चलती रही है, वैसे ही गाँव की

धूलभरी पगडंडी पर मेरे पीछे रहना नहीं भूलती। किसी भी समय, कहीं भी जाने के लिए प्रस्तुत होते ही मैं भक्तिन को छाया के समान साथ पाती हूँ।

युद्ध को देश की सीमा में बढ़ते देख जब लोग आतंकित हो उठे, तब भक्तिन के बेटी-दामाद उसके नाती को लेकर बुलाने आ पहुँचे; पर बहुत समझाने-बुझाने पर भी वह उनके साथ नहीं जा सकी। सबको वह देख आती है; रुपया भेज देती है; पर उनके साथ रहने के लिए मेरा साथ छोड़ना आवश्यक है; जो संभवतः भक्तिन को जीवन के अंत तक स्वीकार न होगा।

जब गत वर्ष युद्ध के भूत ने वीरता के स्थान में पलायन-वृत्ति जगा दी थी, तब भक्तिन पहली ही बार सेवक की विनीत मुद्रा के साथ मुझसे गाँव चलने का अनुरोध करने आई। वह लकड़ी रखने के मचान पर अपनी नयी धोती बिछाकर मेरे कपड़े रख देगी, दीवाल में कीलें गाड़कर और उन पर तख्ते रखकर मेरी किताबें सजा देगी, धान के पुआल का गोंदरा बनवाकर और उस पर अपना कंबल बिछाकर वह मेरे सोने का प्रबंध करेगी। मेरे रंग, स्याही आदि को नयी हँडियों में सँजोकर रख देगी और कागज़-पत्रों को छींके में यथाविधि एकत्र कर देगी।

'मेरे पास वहाँ जाकर रहने के लिए रुपया नहीं है, यह मैंने भक्तिन के प्रस्ताव को अवकाश न देने के लिए कहा था; पर उसके परिणाम ने मुझे विस्मित कर दिया। भक्तिन ने परम रहस्य का उद्‌घाटन करने की मुद्रा बना कर और पोपला मुँह मेरे कान के पास लाकर हौले-हौले बताया कि उसके पास पाँच बीसी और पाँच रुपया गड़ा रखा है। उसी से वह सब प्रबंध कर लेगी। फिर लड़ाई तो कुछ अमरौती खाकर आई नहीं है। जब सब ठीक हो जाएगा, तब यहीं लौट आएँगे। भक्तिन की कंजूसी के प्राण पूंजीभूत होते-होते पर्वताकार बन चुके थे; परंतु इस उदारता के डाइनामाइट ने क्षण भर में उन्हें उड़ा दिया। इतने थोड़े रुपये का कोई महत्त्व नहीं; परंतु रुपये के प्रति भक्तिन का अनुराग इतना प्रख्यात हो चुका है कि मेरे लिए उसका परित्याग मेरे महत्त्व की सीमा तक पहुँचा देता है।

भक्तिन और मेरे बीच में सेवक-स्वामी का संबंध है, यह कहना कठिन है; क्योंकि ऐसा कोई स्वामी नहीं हो सकता, जो इच्छा होने पर भी सेवक को अपनी सेवा से हटा न सके और ऐसा कोई सेवक भी नहीं सुना गया, जो स्वामी के चले जाने का आदेश पाकर अवज्ञा से हँस दे। भक्तिन को नौकर कहना उतना ही असंगत है, जितना अपने घर में बारी-बारी से आने-जाने वाले अँधेरे-उजाले और आँगन में फूलने वाले गुलाब और आम को सेवक मानना। वे जिस प्रकार एक अस्तित्व रखते हैं, जिसे सार्थकता देने के लिए ही हमें सुख-दुख देते हैं, उसी प्रकार भक्तिन का स्वतंत्र व्यक्तित्व अपने विकास के परिचय के लिए ही मेरे जीवन को घेरे हुए है।

परिवार और परिस्थितियों के कारण स्वभाव में जो विषमताएँ उत्पन्न हो गई हैं, उनके भीतर से एक स्नेह और सहानुभूति की आभा फूटती रहती है, इसी से उसके संपर्क में आने वाले व्यक्ति उसमें जीवन की सहज मार्मिकता ही पाते हैं। छात्रावास की बालिकाओं में से कोई अपनी चाय बनवाने के लिए देहली पर बैठी रहती है, कोई बाहर खड़ी मेरे लिए बने नाश्ते को चखकर उसके स्वाद की विवेचना करती रहती है। मेरे बाहर निकलते ही सब चिड़ियों के समान उड़ जाती हैं और भीतर आते ही यथास्थान विराजमान हो जाती हैं। इन्हें आने में रुकावट न हो, संभवतः इसी से भक्तिन अपना दोनों जून का भोजन सवेरे ही बनाकर ऊपर के आले में रख देती है और खाते समय चौके का एक कोना धोकर पाक-छत के सनातन नियम से समझौता कर लेती है।

मेरे परिचितों और साहित्यिक बंधुओं से भी भक्तिन विशेष परिचित है; पर उनके प्रति भक्तिन के सम्मान की मात्रा, मेरे प्रति उनके सम्मान की मात्रा पर निर्भर है और सद्भाव उनके प्रति मेरे सद्भाव से निश्चित होता है। इस संबंध में भक्तिन की सहजबुद्धि विस्मित कर देने वाली है।

वह किसी को आकार-प्रकार और वेश-भूषा से स्मरण करती है और किसी को नाम के अपभ्रंश द्वारा । कवि और कविता के संबंध में उसका ज्ञान बढ़ा है; पर आदर-भाव नहीं। किसी के लंबे बाल और अस्त-व्यस्त वेश-भूषा देखकर वह कह उठती है- 'का ओहू कवित्त लिखे जानत हैं' और तुरंत ही उसकी अवज्ञा प्रकट हो जाती है–तब ऊ कुच्छौ करिहैं-धरिहैं ना–बस गली-गली गाउत-बजाउत फिरिहैं।

पर सबका दुख उसे प्रभावित कर सकता है। विद्यार्थी वर्ग में से कोई जब कारागार का अतिथि हो जाता है, तब उस समाचार को व्यथित भक्तिन बीता-बीता भरे लड़कन का जेहल-कलजुग रहा तौन रहा अब परलय होई जाई–उनकर माई का बड़े लाट तक लड़ै का चाहीं, कहकर दिन भर सबको परेशान करती है। बापू से लेकर साधारण व्यक्ति तब सबके प्रति भक्तिन की सहानुभूति एकरस मिलती है।

भक्तिन के संस्कार ऐसे हैं कि वह कारागार से वैसे ही डरती है, जैसे यमलोक से। ऊँची दीवार देखते ही, वह आँख मूँदकर बेहोश हो जाना चाहती है। उसकी यह कमज़ोरी इतनी प्रसिद्धि पा चुकी है कि लोग मेरे जेल जाने की संभावना बता-बताकर उसे चिढ़ाते रहते हैं। वह डरती नहीं, यह कहना असत्य होगा; पर डर से भी अधिक महत्त्व मेरे साथ का ठहरता है। चुपचाप मुझसे पूछने लगती है कि वह अपनी कै धोती साबुन से साफ़ कर ले, जिससे मुझे वहाँ उसके लिए लज्जित न होना पड़े । क्या-क्या सामान बाँध ले, जिससे मुझे वहाँ किसी प्रकार की असुविधा न हो सके। ऐसी यात्रा में किसी को किसी के साथ जाने का अधिकार नहीं, यह आश्वासन भक्तिन के लिए कोई मूल्य नहीं रखता। वह मेरे न जाने

की कल्पना से इतनी प्रसन्न नहीं होती, जितनी अपने साथ न जा सकने की संभावना से अपमानित। भला ऐसा अंधेर हो सकता है। जहाँ मालिक वहाँ नौकर – मालिक को ले जाकर बंद कर देने में इतना अन्याय नहीं; पर नौकर को अकेले मुक्त छोड़ देने में पहाड़ के बराबर अन्याय है। ऐसा अन्याय होने पर भक्तिन को बड़े लाट तक लड़ना पड़ेगा। किसी की माई यदि बड़े लाट तक नहीं लड़ी, तो नहीं लड़ी; पर भक्तिन का तो बिना लड़े काम ही नहीं चल सकता।

ऐसे विषम प्रतिद्वंद्वियों की स्थिति कल्पना में भी दुर्लभ है।

मैं प्राय: सोचती हूँ कि जब ऐसा बुलावा आ पहुँचेगा, जिसमें न धोती साफ़ करने का अवकाश रहेगा, न सामान बाँधने का, न भक्तिन को रुकने का अधिकार होगा, न मुझे रोकने का, तब चिर विदा के अंतिम क्षणों में यह देहातिन वृद्धा क्या करेगी और मैं क्या करूँगी?

भक्तिन की कहानी अधूरी है; पर उसे खोकर मैं इसे पूरी नहीं करना चाहती।

अभ्यास

पाठ के साथ

1. भक्तिन अपना वास्तविक नाम लोगों से क्यों छुपाती थी? भक्तिन को यह नाम किसने और क्यों दिया होगा?
2. दो कन्या-रत्न पैदा करने पर भक्तिन पुत्र-महिमा में अंधी अपनी जिठानियों द्वारा घृणा व उपेक्षा का शिकार बनी। ऐसी घटनाओं से ही अकसर यह धारणा चलती है कि स्त्री ही स्त्री की दुश्मन होती है। क्या इससे आप सहमत हैं?
3. भक्तिन की बेटी पर पंचायत द्वारा ज़बरन पति थोपा जाना एक दुर्घटना भर नहीं, बल्कि विवाह के संदर्भ में स्त्री के मानवाधिकार (विवाह करें या न करें अथवा किससे करें) इसकी स्वतंत्रता को कुचलते रहने की सदियों से चली आ रही सामाजिक परंपरा का प्रतीक है। कैसे?
4. ***भक्तिन अच्छी है, यह कहना कठिन होगा, क्योंकि उसमें दुर्गुणों का अभाव नहीं*** लेखिका ने ऐसा क्यों कहा होगा?
5. भक्तिन द्वारा शास्त्र के प्रश्न को सुविधा से सुलझा लेने का क्या उदाहरण लेखिका ने दिया है?
6. भक्तिन के आ जाने से महादेवी अधिक देहाती कैसे हो गईं?

पाठ के आसपास

1. ***आलो आँधारि*** की नायिका और लेखिका ***बेबी हालदार*** और ***भक्तिन*** के व्यक्तित्व में आप क्या समानता देखते हैं?

3. भक्तिन की बेटी के मामले में जिस तरह का फ़ैसला पंचायत ने सुनाया, वह आज भी कोई हैरतअंगेज़ बात नहीं है। अखबारों या टी. वी. समाचारों में आनेवाली किसी ऐसी ही घटना को ***भक्तिन*** के उस प्रसंग के साथ रखकर उस पर चर्चा करें।
4. पाँच वर्ष की वय में ब्याही जानेवाली लड़कियों में सिर्फ़ ***भक्तिन*** नहीं है, बल्कि आज भी हज़ारों अभागिनियाँ हैं। बाल-विवाह और उम्र के अनमेलपन वाले विवाह की अपने आस-पास हो रही घटनाओं पर दोस्तों के साथ परिचर्चा करें।
5. महादेवी जी इस पाठ में हिरनी सोना, कुत्ता बसंत, बिल्ली गोधूलि आदि के माध्यम से पशु-पक्षी को मानवीय संवेदना से उकेरने वाली लेखिका के रूप में उभरती हैं। उन्होंने अपने घर में और भी कई पशु-पक्षी पाल रखे थे तथा उन पर रेखाचित्र भी लिखे हैं। शिक्षक की सहायता से उन्हें ढूँढ़कर पढ़ें। जो **मेरा परिवार** नाम से प्रकाशित है।

भाषा की बात

1. नीचे दिए गए विशिष्ट भाषा-प्रयोगों के उदाहरणों को ध्यान से पढ़िए और इनकी अर्थ-छवि स्पष्ट कीजिए-
   (क) पहली कन्या के दो संस्करण और कर डाले
   (ख) खोटे सिक्कों की टकसाल जैसी पत्नी
   (ग) अस्पष्ट पुनरावृत्तियाँ और स्पष्ट सहानुभूतिपूर्ण
2. 'बहनोई' शब्द 'बहन (स्त्री.)+ओई' से बना है। इस शब्द में हिंदी भाषा की एक अनन्य विशेषता प्रकट हुई है। पुंलिंग शब्दों में कुछ स्त्री-प्रत्यय जोड़ने से स्त्रीलिंग शब्द बनने की एक समान प्रक्रिया कई भाषाओं में दिखती है, पर स्त्रीलिंग शब्द में कुछ पुं. प्रत्यय जोड़कर पुंलिंग शब्द बनाने की घटना प्रायः अन्य भाषाओं में दिखलाई नहीं पड़ती। यहाँ पुं. प्रत्यय 'ओई' हिंदी की अपनी विशेषता है। ऐसे कुछ और शब्द और उनमें लगे पुं. प्रत्ययों की हिंदी तथा और भाषाओं में खोज करें।
3. पाठ में आए लोकभाषा के इन संवादों को समझ कर इन्हें खड़ी बोली हिंदी में ढाल कर प्रस्तुत कीजिए।
   (क) *ई कउन बड़ी बात आय। रोटी बनाय जानित है, दाल राँध लेइत है, साग-भाजी छँउक सकित है, अउर बाकी का रहा।*
   (ख) *हमारे मालकिन तौ रात-दिन कितबियन माँ गड़ी रहती हैं। अब हमहूँ पढ़ै लागब तो घर-गिरिस्ती कउन देखी-सुनी।*
   (ग) *ऊ बिचरिअउ तौ रात-दिन काम माँ झुकी रहती हैं, अउर तुम पचै घूमती-फिरती हौ, चलौ तनिक हाथ बटाय लेउ।*
   (घ) *तब ऊ कुच्छौ करिहैं-धरिहैं ना—बस गली-गली गाउत-बजाउत फिरिहैं।*
   (ङ) *तुम पचै का का बताईयहै पचास बरिस से संग रहित है।*

(च) *हम कुकुरी बिलारी न होयँ, हमार मन पुसाई तौ हम दूसरा के जाब नाहिं त तुम्हार पचै की छाती पै होरहा भूँजब और राज करब, समुझे रहौ।*

4. ***भक्तिन*** पाठ में ***पहली कन्या के दो संस्करण*** जैसे प्रयोग लेखिका के खास भाषाई संस्कार की पहचान कराता है, साथ ही ये प्रयोग कथ्य को संप्रेषणीय बनाने में भी मददगार हैं। वर्तमान हिंदी में भी कुछ अन्य प्रकार की शब्दावली समाहित हुई है। नीचे कुछ वाक्य दिए जा रहे हैं जिससे वक्ता की खास पसंद का पता चलता है। आप वाक्य पढ़कर बताएँ कि इनमें किन तीन विशेष प्रकार की शब्दावली का प्रयोग हुआ है? इन शब्दावलियों या इनके अतिरिक्त अन्य किन्हीं विशेष शब्दावलियों का प्रयोग करते हुए आप भी कुछ वाक्य बनाएँ और कक्षा में चर्चा करें कि ऐसे प्रयोग भाषा की समृद्धि में कहाँ तक सहायक है?

– ***अरे! उससे सावधान रहना! वह नीचे से ऊपर तक वायरस से भरा हुआ है। जिस सिस्टम में जाता है उसे हैंग कर देता है।***

– ***घबरा मत! मेरी इनस्वींगर के सामने उसके सारे वायरस घुटने टेकेंगे। अगर ज़्यादा फ़ाउल मारा तो रेड कार्ड दिखा के हमेशा के लिए पवेलियन भेज दूँगा।***

– ***जानी टेंसन नई लेने का वो जिस स्कूल में पढ़ता है अपुन उसका हैडमास्टर है।***

शब्द-छवि

तुम पचै – तुम लोगों से
दुर्वह – जिसे ढोना कठिन हो
अलगौझा – बँटवारा
नैहर – मायका
विधात्री – जन्म देने वाली माँ
पुरखिन – बुज़ुर्ग महिला
राब – गन्ने का पका हुआ गाढ़ा रस
दुर्लंघ्य – जिसे पार करना कठिन हो
कुंचित – सिकुड़ी हुई
तुषारपात – ओले बरसाना
हतबुद्धि – जिसकी बुद्धि या विचारने की शक्ति मारी गयी हो।
होरहा – हरे अनाजों का आग पर भुना रूप
झूँसी – गंगा के तट पर (इलाहाबाद के पास) का स्थान, जहाँ प्राचीन काल में प्रतिष्ठानपुरी नाम की नगरी बसी हुई थी।
भइउहू – छोटे भाई की पत्नी
जिठौत – जेठ का पुत्र
अजिया ससुर – पति का दादा